वैदिक व्याख्यान माला — ४७ वाँ व्याख्यान

रुद्र देवताका स्वरूप

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय मंडल

स्वाध्याय मंडल, पारडी

३७ नये पैसे

रुद्रदेवताका स्वरूप

मानवरूपोंमें रुद्र ।

(ज्ञानी पुरुष)

पूर्वोक्त मन्त्रों में जो ज्ञानी-वर्ग के रुद्र हैं, उनकी नामावलि यह है। ज्ञानी-वर्गके रुद्रोंको ब्राह्मणवर्ग के रुद्र कहा जा सकता है।

१. **गृत्स** = ज्ञानी, कवि, एक ऋषि [२५]
२. **गृत्सपति** = ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, गृत्सों का अधिष्ठाता [२५]
३. **श्रुत** = विख्यात, प्रसिद्ध, विद्वान्, श्रुति का वेत्ता [३५]
४. **पुलस्ति** = विद्वान्, ऋषि [४३]
५. **रुद्र** = [रु] शब्द शास्त्र का [द्र] पारंगत, ज्ञानी [१८]
६. **उद्गुरमाण** = उत्तम ज्ञानका उपदेश देनेवाला, वक्ता [४६]
७. **अधिवक्ता** = [वा० य० १६।५] = उपदेशक, अध्यापक, वक्ता।
८. **मंत्री** = राजा का मन्त्री, दिवान, सलाहगार, सुविचारी, बुद्धिमान्, चतुर, हित की मंत्रणा देनेवाला [१९]
९. **देवानां हृदयः** = देवताओंके लिये जिसने अपना हृदय दिया है, भक्त, प्रेमी, साधु, सज्जनों की सेवा करनेवाला [४६]
१०. **भिषक्, दैव्यो भिषक्** = दिव्य वैद्य [वा० य० १६।५], **आयुर्वृध** [६०] आयुष्य की वृद्धि करनेवाला।
११. **ओषधीनां पतिः** = औषधियां अपने पास रखनेवाला [१९]
१२. **सभा** = सभा, परिषद्, विविध सभाओं के सभासद [२४]
१३. **सभापतिः** = सभा का अध्यक्ष, परिषद् का प्रमुख [२४]
१४. **श्रवः** = कान, सुननेवाला, श्रवण करनेवाला, शिष्य [३४] **प्रमृशः** = परामर्श लेनेवाले पंडित [३६]
१५. **प्रतिश्रवः** = सुनानेवाला, उपदेश करनेवाला, गुरु [३४]। वादी-प्रतिवादी, प्रश्न-प्रतिप्रश्न के समान श्रव-प्रतिश्रव ये पद हैं। इनका परस्परसंबंध है। **सोभ्यः** [३३] = पुण्यकर्म करनेवाले तथा **प्रतिसर्य** [३३] = गुप्त बात प्रकट करनेवाले।
१६. **श्लोक्यः** = प्रशंसनीय, श्लोकों के योग्य, प्रशंसनीय विद्वान् [३३]

प्राचीन परंपराके अनुसार वैद्य, राजा का मंत्री, अध्यापक आदि ब्राह्मण अथवा ज्ञानी-वर्गके लोग ही हुआ करते हैं। अर्थात् ये ब्राह्मण हैं अथवा ज्ञानी तो निःसन्देह हैं।

पुरुषसूक्त में ' ब्राह्मणों को नारायण का मुख ' कहा है। यहां उसी नारायण के अथवा रुद्रदेवता के मुख में किन का समावेश होता है, यह अधिक नाम देकर बताया है। यहां के कई नाम जैसे ' उद्गुरमाण ' आदि अन्य वर्गमें भी गिने जाना स्वाभाविक है। जो शेष बचेंगे, वे इस वर्ग में रहेंगे। इस तरह ब्राह्मणवर्ग के रुद्रोंका विचार करने के पश्चात् अब क्षत्रियवर्ग के रुद्रों का, अथवा वीरोंका विचार करते हैं। रुद्र का नाम ' **वीरभद्र** ' सुप्रसिद्ध है। कल्याण करनेवाला वीर ' वीरभद्र ' कहा जाता है। देखिये, वीरभद्रके वर्गमें कौनसे रुद्र गिने जाने योग्य हैं—

क्षत्रिय-वर्गके रुद्र ।

(वीर रुद्र ।)

(**रोदयति इति रुद्रः**) जो रुलाता है, वह रुद्र है। शत्रुओं को रुलाने के कारण वीर को रुद्र कहते हैं। इस तरह क्षत्रिय वीर रुद्र कहे जाते हैं।

१. **रुद्रः** = शत्रुओं को रुलानेवाला वीर [१, १८]
तवस् = बलवान् [४८] आगे राजाके अनेक अधिकारी, ओहदेदार, रुद्र करके गिनाये हैं ।

२. **क्षेत्राणां पतिः** = खेतोंकी रक्षा करनेवाला [१८]
भूतानां अधिपतिः = प्राणियों के रक्षक [५९]

३. **वनानां पतिः** = वनोंकी पालना करनेवाला [१८]
वन्यः = वनमें उत्पन्न [३४]

४. **अरण्यानां पतिः** = अरण्यों का संरक्षण करनेवाला [२०]

५. **स्थपतिः** = स्थानोंका पालक [१९], **पथिरक्षी** [६०], **प्रपथ्य** [४३] = मार्गों की रक्षा करनेहारे ।

६. **कक्षाणां पतिः** [१९] **दिशां पतिः** [१७]
(**कक्षा**) = गुप्त स्थान, अन्तका भाग, बडा अरण्य, बहुत ही बडा वन । [**कक्षाणां पतिः, कक्षापः**] = गुप्त स्थान की रक्षा करनेवाला, अन्तिम विभाग का रक्षक, बडे अरण्योंका रक्षक [१९], **कक्ष्यः** = अरण्य की कक्षा में रहनेवाला [३४]

७. **पत्तीनां पतिः** = सेनाओं का पालक, सेनापति, पादचारी सेनाविभाग का अधिपति [१९], **सत्वनां पतिः** = प्राणियोंका रक्षक [२०]

८. **आव्याधिनीनां पतिः** = उत्तम निशाना मारनेवाले सैनिकोंका अधिपति, सेनापति [२०],
[**व्याधिन्**] = शत्रु का वेध करनेवाला [२०, २४]

९. **विकृन्तानां पतिः** = शत्रु सैनिकोंका अधिपति [२१]

१०. **कुलुञ्चानां पतिः** = शत्रुसेनाको पीसनेवाले, शत्रुपर चढाई करके उनके सेनाविभागोंको पृथक् करके उनका नाश करनेवाले वीरोंके प्रमुख अधिपति [२२]

११. **गणपतिः** = वीरोंके गणों के अधिपति [२५]
ककुभः = प्रमुख, मुख्य [२०]

१२. **व्रातपतिः** = वीरों के समूह के प्रमुख [२५]

१३. **सेना, १४ व्रातः, १५ गणः** = ये सेनाविभागोंके नाम हैं; सैनिकों की संख्या के अनुसार ये नाम प्रयुक्त होते हैं [२५, २६] ।

१६. **शूरः** = वीर, शूर [३४], **क्षयद्वीरः** = शत्रु का नाश करनेवाला वीर [४८]; **उग्रः, भीमः** = उग्र, शूर वीर, भयानक कर्म करनेवाले [४०]

१७. **विचिन्वत्कः** = शूर वीर, बहादुर, चुन चुन कर शत्रुवीरों का वेध करनेवाला वीर [४६], **विकिरिद्रः** = विशेष नाश करनेवाला [५२]

१८. **रथी** = रथमें बैठनेवाला वीर [२६]

१९. **अरथी** = रथके विना युद्ध करनेमें प्रवीण वीर [२६]

२०. **आशुरथ** = जो त्वराके साथ रथयुद्ध करता है, त्वरासे रथ चलानेवाला वीर [३४]

२१. **उगणा** = शस्त्रास्त्रों को ऊपर उठाकर शत्रुपर हमला करनेवाली सेना का समूह [२४]

२२. **आशुसेनः** = अपनी सेनाको अतिशीघ्र तैयार करनेवाला वीर, अपनी सेनाको सदा सिद्ध रखनेवाला वीर [३४]

२३. **श्रुतसेनः** = जिस सेनाका यश चारों और फैला हो, विख्यात, यशस्वी, सदा विजयी सेनापति [३५]

२४. **सेनानी** = सेनाको कुशलता के साथ चलानेवाला सेनापति [२६]

२५. **दुंदुभ्यः** = नौबत, ढोल अथवा बाजेके साथ रहकर लडनेवाला सैन्य [३५]

२६. **असिमान्** = तलवारसे लडनेवाले सैनिक वीर [२१]

२७. **इषुमान्** = बाणोंका उपयोग करनेवाले, बाणोंको बर्तनेवाले वीर [२२, २९]

२८. **सकायी** = तीक्ष्ण बाण अथवा भाला बर्तनेवाला वीर [२१]
सकाहस्ताः = शस्त्र धारण करनेवाले [६१]

२९. **निषङ्गी** = खड्गधारी वीर [२०, २१, ३६]

३०. **धन्वायी** = धनुष्य धारण करके शत्रुपर चढाई करनेवाला वीर [२२]
आयुधी = शस्त्रोंको साथ रखनेवाला वीर [३६]

३१. **शतधन्वा** = सौ धनुष्योंका धारण करनेवाला वीर [२९]

३२. **इषुधिमान्** = बाणोंके तर्कसको पास रखनेवाला [२१, ३६]

३३. **तीक्ष्णेषुः** = तीखे बाणोंका उपयोग करनेवाला [३६]

३४. **स्वायुधः** = उत्तम आयुधोंको पास रखनेवाला [३६]

३५. **सुधन्वन्** = उत्तम धनुष्यका उपयोग करनेवाला [३६]

३६–३९. **वर्मी, कवची, बिल्मी, वरूथी** = विविध प्रकारके कवच धारण करनेवाला वीर [३५]

४०. **कृत्स्नायतया धावन्** = आकर्ण धनुष्य पूर्णतया खींचकर युद्धभूमिमें दौडनेवाला वीर [२०]

४१. निव्याधी [१८, २०] = शत्रुका निःशेष वेध करनेवाला वीर [२०]

४२. जिघांसत् = शत्रुकी कत्ल करनेवाला वीर [२१]

४३. विध्यत् = शत्रुका वेध करनेवाला [२३]

४४. अवभेदी = शत्रुको नीचे गिराकर उसको छिन्नभिन्न करनेवाला वीर [३४]

४५. हन्ता = शत्रुका हनन करनेवाला [४०]

४६. हनीयान् = शत्रुका संहार करनेवाला [४०]

४७. अभिघ्नत् = शत्रुपर प्रहार करनेवाला [४६]

४८. अग्रेवधः = अग्रभागमें रहकर शत्रुका वध करनेवाला [४०]

४९. दूरेवधः = दूरसे शत्रुका वध करनेवाला [४०]

५०. आहनन्यः = शत्रुपर आघात करनेवाला [३५] ढोलका शब्द करता हुआ शत्रुपर आक्रमण करनेवाला।

५१ धृष्णुः = शत्रुका वध करनेवाला साहसी वीर [१४,३६]

५२. विक्षिणत्क = शत्रुका नाश करनेवाला [४६]

५३. आनिर्हत = आसमन्तात् भागसे जिसने शत्रुका वध किया है [४६]

५४. सहमानः = शत्रुका पराभव करनेवाला [२०]

५५. आतन्वानः= धनुष्यकी प्रत्यंचा चढानेवाला वीर [२१]

५६. प्रतिदधानः = प्रत्यंचा चढाये धनुष्यपर बाण लगानेवाला [२२]

५७. आयच्छत् = धनुष्यकी डोरी खींचनेवाला वीर [२२]

५८. अस्यत् = शत्रुपर बाण फेंकनेवाला [२२]

५९. विसृजत् = शत्रुपर विशेष रूपसे बाण फेंकनेवाला [२३]

६०-६१. आखिदत् प्रखिदत् = शत्रुको खेद उत्पन्न करने योग्य आचरण करनेवाला वीर [४६]

६२-६३. आव्याधिनी [२४], आव्याधिनीनां पतिः [२०] = शत्रुसेनापर चारों ओरसे हमला करनेवाला वीर तथा ऐसी वीरसेनाका सेनापति।

६४. विविध्यन्ती = विशेष रीतिसे शत्रुसेना का वेध करनेवाली प्रबल वीरसेना [२४]

६५. तृंहती = शत्रुका नाश करनेवाली वीरसेना [२४]

६६. अवसान्यः = अन्तिम भागपर खडा रहकर संरक्षण करनेवाला वीर [३३]

*

६७. पथीनां पतिः = मार्गस्थोंके रक्षक वीर [१७]

६८. मृगयुः= मृगया, अथवा शिकार करनेवाला वीर [२७]

ये वीरवर्ग अथवा क्षत्रियवर्गके नाम हैं। रुद्रोंके ही ये नाम हैं, जैसे ब्राह्मणवर्गके रुद्र पीछे दिये हैं, वैसे ही ये क्षत्रियवर्गके रुद्र हैं। जिस तरह ब्राह्मण रुद्र हैं, वैसे ही क्षत्रिय भी रुद्र हैं। अब वैश्यवर्गके रुद्र देखिये। वैश्यवर्गमें खेती और पशुपालन करनेवालोंका समावेश होता है, अतः उक्त मन्त्रोंमें वैश्यरुद्रोंका वर्णन देखिये—

वैश्यवर्गके रुद्र।

वैश्यवर्गमें निम्नलिखित रुद्रोंका अन्तर्भाव हो सकता है—

१. वाणिजः = बनिया, व्योपारी, दूकानदारी करनेवाला [१९]

२. संग्रहीता = पदार्थों का संग्रह करनेवाला [२६] वारिवस्कृत् [१९] धनकी उत्पत्ति करनेवाला।

३-४. अन्धसस्पतिः [४७], अन्नानां पतिः [१८]= अन्नका पालनकर्ता, अन्नके लिये उपयोगी होनेवाले विविध धान्यादि पदार्थोंका पालन करनेवाला[४७,१८] ऐलबृदाः [६०] = अन्नकी वृद्धि करनेवाला।

५. वृक्षाणां पतिः = वृक्षवनस्पति आदिओं की पालना करनेवाला [१९]

६-७. पशुपतिः [२८], पशूनां पतिः [१७] = पशुओंका पालनेवाला।

८. अश्वपतिः = घोडोंकी पालना करनेवाला [२४]

९-१०. श्वपतिः [२८], श्वनो [२७], कुत्तोंकी पालना करनेवाला।

११. पुष्टानां पतिः = पुष्टोंके स्वामी [१७]

१२. जगतां पतिः = चलनेवालोंका पालक [१८]

वैश्योंका कर्तव्य खेती, वृक्षसंवर्धन और पशुपालन है। यह कर्म करनेवाले ये रुद्र इस रुद्रसूक्तमें दीखते हैं। इस तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्गोंके रुद्रोंका वर्णन हमने यहां तक देखा। शूद्रवर्गके रुद्रोंका वर्णन अब देखना है। शूद्रोंमें सब कारीगरों का समावेश होता है। देखिये—

शिल्पिवर्गके रुद्र।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें निम्नलिखित रुद्र शिल्पिवर्गके आ गये हैं—

१. सूतः = सारथी, रथ चलानेवाला, घोडोंको शिक्षा देनेवाला, भाट और वीरोंकी कथाओंको सुनानेवाला।

२-४. **क्षत्ता** [२६], **तक्षा** [२७], **रथकारः** [२७]= बढई, तखाण, रथ बनानेवाला, लकडीका काम करनेवाला [२६]

५-६. **धनुष्कृत्, इषुकृत्** = धनुष्य और बाण बनानेवाला कारीगर [४६]

७. **कर्मारः** = लुहार, लोहेका अथवा धातुका कार्य करनेवाला [२७]

८. **कुलालः** = कुम्हार [२७]

९. **निषादः** = जंगलमें रहनेवाला, जंगली आदमी, सभामें [नि-साद] सबसे नीचे बैठने योग्य [२७]

१०. **पुंजि-ष्ठ** = टोलियां बनाकर रहनेवाले लोग [२७]

११. **गिरि-चरः** [२२] **गिरिशयः** [२९] **गिरिशन्त** [२] पहाडियोंपर घूमनेवाला, पहाडी लोग।

१२. **उत्तरण, प्रतरण, तार** = नदीके पार करानेवाला, नदीपार करानेमें कुशल [४२]

१३. **अहन्तिः सूतः** = हननसे बचानेवाला सूत [१८]

ये नाम प्रायः कारीगरोंके तथा अन्यान्य व्यवहार करनेवालोंके वाचक हैं। अर्थात् शूद्रों के वाचक हैं। शूद्रोंमें जो कारीगरी कर नहीं सकते, वे परिचर्या, सेवा शुश्रूषा करके अपनी आजीविका करते है, उनके नाम उपर्युक्त रुद्रमंत्रों में ये हैं—

१४. **परि-चरः** – परिचारक, नौकर, सेवक, परिचर्या करनेवाले [२२]

१५. **नि-चेरुः** = नौकरी करनेवाला, नीचे के स्थानमें रहनेयोग्य [२०]

१६. **जघन्यः** – हीन, अन्त्यज, नीच वृत्तिका मनुष्य, अधःपतित मनुष्य [३२]

ये नाम शूद्रवर्ग के हैं। इनमें 'परिचर' नाम परिचर्या करनेवाले का स्पष्ट है। लुहार, बढई आदि के नाम भी सब को मालूम हैं। शूद्रों में दो भेद हैं, एक सच्छूद्र कहलाते हैं। जो कारीगरीके द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त करके निर्वाह करते हैं और दूसरे असच्छूद्र हैं; जो सेवा करके आजीविका प्राप्त करते हैं। इन दोनों प्रकारके शूद्रों का वर्णन पूर्वोक्त शब्दोंद्वारा हुआ है।

यहां तक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्गोंके अर्थात् ज्ञानी, शूर, व्यापारी और कारीगर इन चार प्रकार के व्यवसायियों के नाम रुद्र के नामों में दीखते हैं। वे सब रुद्र के रूप हैं। रुद्रदेवता इन रूपों में इस भूमिपर विचर रही है। रुद्रदेवता की भेट करनी हो, तो इन रूपों में रुद्र का दर्शन हो सकता है। रुद्र इन नाना रूपों में इस भूमिपर विचर रहा है। रुद्रदेवता के भक्त अपनी उपास्य देवता का दर्शन करें। वेद ने रुद्रदेवता का इस तरह प्रत्यक्ष साक्षात्कार कराया है। पाठक इस का स्वीकार करें।

पाठक यह जानते हैं कि, 'रुद्र' उसी अद्वितीय देव का नाम है, जिस को 'पुरुष, नारायण, अग्नि, इन्द्र' आदि अनेक नाम दिये गये हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्
बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः
पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ [ऋ० १०।९०।१२]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंके लोग ये सब परमात्माके क्रमशः सिर, बाहू, पेट या जंघा तथा पांव हैं। अर्थात् चारों वर्ण मिलकर परमात्मा का शरीर है। परमात्मा के शरीरके ये चार अवयव हैं। इस परमात्मा को आत्मा, ब्रह्म, पुरुष, नारायण या रुद्र आदि नामों से पुकारते हैं। रुद्र और नारायण एक ही देव है। एक ही देवताके ये दो नाम हैं। इसलिये जो वर्णन नारायणपुरुष का पुरुषसूक्त में हुआ है, वही वर्णन रुद्र का विस्तार से रुद्रसूक्त में दिखाई दिया, तो वह उचित ही है।

यहां पाठक देखें कि, पुरुषसूक्त में जो वर्णन अतिसंक्षेप से है, वही वर्णन रुद्रसूक्त में विस्तार से है। पुरुषसूक्त में पुरुष-नारायण-देवता के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये लोग अवयव हैं, ऐसा कहा है और रुद्रसूक्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्गों के कई नाम गिनाये हैं। अर्थात् पुरुषसूक्त का यह विस्तार से स्पष्टीकरण है। इस रुद्रसूक्तमें ये रुद्र के रूप हैं, ऐसा कहा है; और इन रुद्र को नमस्कार किया है। ये उपास्य और संसेव्य हैं, ऐसा यहां बताया है।

मानवों को जो परमात्मा संसेव्य है, वह ज्ञानी, शूर, व्यापारी और सेवक रूप से इस भूमिपर विचरनेवाला ही परमात्मा है। यह बात इस रुद्रसूक्त के मनन से सिद्ध हो रही है। परमात्मा सब रूपों में इस भूमि पर विचर रहा है, इन में मानवों के रूप भी हैं। हमें परमात्मा की सेवा करके कृतकृत्य बनना है, तो हमें इन मानवों की–जनतारूपी जनार्दन की सेवा करना उचित है। वेदका यही धर्म है, पर आज मानवों की सेवा अपनी

कृतकृत्यता के लिये करने का भाव समाज से दूर हुआ है और अन्यान्य उपासनाएं प्रचलित हुई हैं !! वैदिक धर्म से जनता कितनी दूर जा रही है, इसका विचार यहां इस विवेक से हो सकता है।

चार वर्णों के रुद्र।

चार वर्णों के चार वर्गों में जो रुद्र होते हैं, उनकी गणना उपर के लेख में की है, परन्तु वहां ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ये नाम नहीं आये हैं। इसलिये पाठकोंके मनमें सन्देह हो सकता है कि, ये नाम चार वर्णों के कैसे माने जायेंगे? इस शंकाका निवारण यजुर्वेदकी मैत्रायणी-संहिता में किया है, वह मन्त्र भाग अब देखिये—

नमो ब्राह्मणेभ्यो राजन्येभ्यश्च वो नमः।
नमः सूतेभ्यो विश्येभ्यश्च वो नमः॥

(मैत्रायणी सं० २।९।५)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सूत संज्ञक रुद्रों को मैं प्रणाम करता हूं।' वहां शूद्र नाम नहीं है, पर 'सूत' नाम है, जो शूद्र का वाचक है। अन्य तीन नाम हैं। इस से सिद्ध होता है कि, चारों वर्णों के लोग रुद्र देवताके रूप हैं। इसलिये इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

पूर्वोक्त चार वर्णों के रुद्रोंमें ही संपूर्ण जनता समाप्त नहीं होती है। जिनको दुष्ट डाकू आदि कहा जाता है, उन रूपों में भी रुद्रदेवता हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, देखिये—

आततायी वर्ग के रुद्र।

१. **आततायी** = घातपात करनेवाला [१८] धनुष्य सज्य करके हमला करनेवाला घातक।

२-५. **स्तेनानां पतिः** [२०], **तस्कराणां पतिः** [२१], **मुष्णतां पतिः** [९१], **स्तायूनां पतिः** [२१] = चोर, डाकू, लुटेरे, ठगानेवाले।

६-८. **वञ्चत** [२१], **परिवञ्चत** [२१] = धोखेबाज, फरेबी, मक्कार, कपटी, छल करनेवाला।

९ **लोप्यः** = नियमों का लोप करनेवाला, नियमों का उल्लंघन करनेवाला [४५]।

१९. **नक्तं चरत** = रात्री के समय दुष्ट इच्छा से भ्रमण करनेवाला [२१]

ये नाम चोर, डाकू, लुटेरे, आतयायी दुष्टोंके हैं। निःसंदेह ये दुष्ट भाववाले मानवों के वाचक हैं। परन्तु ये भी रुद्र के ही रूप हैं। जिस तरह ज्ञानदाता ब्राह्मण, सब के पालन करनेवाले क्षत्रिय, सब के पोषणकर्ता वैश्य और सबकी सहायतार्थ कर्म करनेवाले शूद्र रुद्रके रूप हैं, उसी तरह चोरी करके लोगों को लूटनेवाले भी रुद्र के ही रूप हैं।

पाठकों को यह मानने के लिये बडा कठिन कार्य है। चोर भी परमात्मा का अंश है। क्या यह सत्य नहीं हैं? भगवद्गीता में कहा है कि—

मम एव अंशः जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

[भ. गी. १५।७]

'मेरा ही सनातन एक अंश जीवलोकमें जीव होता है।' यदि मानवों का जीव परमात्मा का अंश है, तब तो वह जैसा ज्ञानी योगियों का जीव परमात्मा का अंश है, वैसा ही दुष्ट डाकुओं का भी जीव परमात्मा का ही अंश है। जीवमात्र परमात्मा का अंश है, यह जैसा भगवद्गीता में कहा है, वैसा ही वेद में- पुरुषसूक्त में भी कहा है। पुरुष का एक अंश इस विश्वमें वारंवार जन्मता है, यह बात पुरुषसूक्त में कही है। अस्तु, इस तरह चार वर्णोंके मानवों का जीव जैसा परमात्मा का अंश है, वैसा ही चोर, डाकू, लुटेरे दुष्टों का भी जीव परमात्माका ही अंश है। तत्त्वतः सब की एकता है।

इसी तरह आंख में सूर्य का अंश, जिह्वा में जल का अंश, नासिकामें पृथ्वीका अंश और अन्यान्य इंद्रियों में और अवयवों में अन्यान्य देवताओं के अंश आकर वसे हैं। ये जैसे सत्पुरुष के देह में वसे हैं, वैसे ही दुष्ट दुर्जनोंके देहों में भी वसे हैं। देवताओं के अंशों के निवास की दृष्टि से भी सब मानवों की, सब प्राणियों की समता है। इस रीति से ३३ देवताओं के अंश और परमात्मा का अंश शरीर में आकर रहे हैं, इस दृष्टि से सब के देह समान हैं। प्रत्येक देह में ३३ देवताओं के अंशों के साथ परमात्मा का अंश रहता है। देह सज्जन का हो या दुर्जन का, उसमें परमात्माके अंशके साथ देवताओं के अंश रहते ही हैं।

अतः वेद का कथन यह है कि, जिस तरह चार वर्णों में विद्यमान जनता संसेव्य है, उसी तरह चोर, डाकू आदि भी वैसे ही संसेव्य हैं। पर सज्जनों की अपेक्षा दुर्जनों की सेवा अधिक प्रेमसे करनी चाहिये, क्योंकि इन दुष्ट मानवों की

दुष्टता उन के शारीरिक और मानसिक विकृति के कारण होती है।

सेवा उसकी करनी चाहिये, जिस के लिये सेवाकी आवश्यकता है। जैसे किसीको सर्दी लगती हो, तो उसको कंबल देना चाहिये, प्यासेको जल, भूखेको अन्न, रोगीको दवा आदि देना सेवा है। जो तृप्त है, उसको अन्न देना सेवा नहीं है। सर्वत्र न्यूनता, हीनता, विकृतता की पूर्तिके लिये ही सेवा हुआ करती है। रोगी-की सेवा शुश्रूषा उसमें उत्पन्न विकार अथवा न्यूनता को दूर करनेके लिये की जानी चाहिये। इसी तरह चोर, डाकू, आततायी, लुटेरे, ठग, कपटी आदि जो गुनहगार हैं, वे यकृत, प्लीहा या मस्तिष्क की विकृतिके कारण अथवा सामाजिक, आर्थिक या राजकीय दोषोंके कारण गुनाह करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं। देखिये, यकृत बिगडनेसे मस्तिष्क बिगडता है और क्रोधी प्रकृति बनती है, जिसका परिणाम खून करनेतक होता है। दारिद्रताके कारण त्रस्त हुआ मनुष्य चोरी की ओर झुकता है। इसी तरह अन्यान्य कुप्रवृत्तियोंके कारण शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा राजकीय विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। इसलिये जैसे ज्वरके रोगी चिकित्सा-द्वारा संसेव्य हैं, उसी तरह चोर, डाकू, खूनी, आततायी भी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा राजकीय चिकित्सासे सेवा करनेयोग्य हैं।

आजकल इन चोर, डाकू आदिकोंको जेलखानेमें बंद करते हैं, कोडोंसे मारते हैं अथवा खूनियोंको फांसी देते हैं। पर वेद कहता है कि, ये भी वैसे ही रुद्रके अवतार हैं, जैसे उत्तम ब्राह्मण और श्रेष्ठ क्षत्रिय। अतः ये भी सेवाके योग्य हैं। उनकी सेवा करके जिन दोषोंके कारण उनमें कुप्रवृत्तियां उठीं, उनको दूर करके उनकी तनदुरुस्ती अथवा मनदुरुस्ती करनी चाहिये। सदैक्य-वादकी भूमिकाके अनुकूल और वेदके द्वारा कथित उपदेशके अनुसार चोर भी ईश्वरका रूप है और वह भी सज्जनके समान ही सेवाके योग्य है। यदि ठीक तरह इस ईश्वरके रूपकी सेवा होगी, तो जो उस ईश्वरके रूपमें अप्रसन्नता थी, वहां सुप्रसन्नता होगी और वेही लोग समाजमें प्रसन्नता बढायेंगे। सदैक्यवादसे अर्थात् वैदिक दृष्टिकोन धारण करनेसे इस तरह चोर और डाकू भी दिव्य भावप्रकाशनका अवसर मिलनेसे देवत्वको प्रकट कर सकते हैं। सेवा तो अप्रसन्नकी प्रसन्नता करनेके लिये ही की जाती है। इस विषयमें अधिक आगे लिखा जायगा। यहां किंचित् दिग्दर्शनमात्र लिखना पर्याप्त है।

यहांतक मानवी प्राणियोंके रुद्र के रूपों का वर्णन हुआ, अब अन्य प्राणियों के रूपों में जो रुद्र का अवतरण हुआ है, उस विषय में देखिये—

प्राणियों में रुद्र के रूप।

१. **अश्वः** = घोडा [२४]

१. **श्वा** = कुत्ता [२८]

३. **व्रज्यः** = वज्र अर्थात् ग्वालों के वाडोंमें पालनेयोग्य गौ आदि पशु [४४]

४. **गोष्ठ्यः** = गोशालामें पालनेयोग्य गौ आदि पशु [४४]

५. **शीभ्यः** = बैल आदि गतिमान् पशु [३१]

६. **गेह्याः** = घरोंमें पालनेयोग्य पशु, अर्थात् गाय, भैंस, बैल, कुत्ता, बिल्ली आदि पशु [४४]

७. **किरिकः** = किरिः = सूवर, सूकर [४६]

८. **तल्प्यः** = बिछोना, चारपाई, खटिया, तकिया आदि में जो कृमिकीट होते हैं, जिनको खटमल आदि नाम हैं, वे कृमि [४४]

९. **रेष्म्यः** = हिंसक कृमिकीट अथवा जीव [३९]

१०. **गह्वरेष्ठः** = घन जंगलों में, पहाडों की गुफा में रहनेवाले सिंह, व्याघ्र आदि पशु [४४], गुहा में रहनेवाले मनुष्य।

११. **इरिण्यः** = उजाड मैदान में, रेतीले स्थानमें, जो भूमि उपजाऊ नहीं है, वैसी भूमि में रहनेवाले, प्राणी अथवा कृमि [४३]

१२. **सिकत्यः** = रेतीले स्थान में रहनेवाले पशु अथवा कृमिकीट [४३]

१३. **किंशिलः** = पत्थरोंवाले स्थान में रहनेवाले पशु अथवा जीव [४३]

१४-१५. **पांसव्यः, रजस्यः** = धूली में रहनेवाले जीवजन्तु [४५]

१६-१७. **ऊर्व्यः** [४५], **उर्वर्यः** [३३], = उपजाऊ भूमिमें रहनेवाले जीव।

१८. **खल्यः** = खलियान में जो जीव रहते हैं [३३]

१९. **सूर्यः** = [सु-ऊर्व्यः], उत्तम उपजाऊ भूमि में होनेवाला जीव [४५]

२०-२१. **शुष्क्यः** [४५], **अवर्ष्यः**, [३८], = शुष्क स्थानमें, वर्षा न होनेवाली भूमिमें होनेवाले जीवजन्तु।

२२-२३. **हरित्यः** [४५], **वर्ष्यः** [३८] = हरेभरे स्थानमें रहनेवाले, वर्षाके स्थानमें होनेवाले जीवजन्तु।

२४. **अवट्यः** = छोटे तालाव में रहनेवाले जीव [३८]

२५. **उलप्यः** = घास जहां उगता है, ऐसे स्थान में होनेवाले कृमि [४५]

२६. **शष्प्यः** = कोमल घासके ऊपर रहनेवाले कृमि [४२]

२७-२८. **पर्णः, पर्णशदः** = पत्तोंपर रहनेवाले जीवजन्तु [४६]

२९-३०. **पथ्यः** [३७], **प्रपथ्यः** [४३], = मार्गों पर रहनेवाले जीव, मार्गोंके रक्षक।

३१. **नीप्यः** = पहाडके निम्न स्थानमें रहनेवाले प्राणी [३७] अथवा पहाडियों की तराईपर निवास करनेवाले मनुष्य।

३२. **आतप्यः** = धूपमें रहनेवाले प्राणी [३८]

३३. **वात्यः** = वायुरूप में रहनेवाले प्राणी [३९]

३४. **घीध्न्यः** = शुष्क अभ्ररूप में रहनेवाले [३८]

३५. **मेघ्यः** = मेघ में रहनेवाले प्राणी [३८]

३६-३७ **काट्यः** [३७, ४४], **कूप्यः** [३८] = कुवें में रहनेवाले प्राणी, कूप के पास रहनेवाले मनुष्य।

३८-४६. **कुल्यः** [३७], **कूल्यः** [४२] = जलप्रवाहमें अथवा प्रवाहके समीप रहनेवाले प्राणी, जलप्रवाह के पास रहनेवाले मनुष्य।

३९. **सरस्यः** = तालाव के समीप अथवा तालाव में रहनेवाले जीव या मानव [३७]

४०. **नादेयः** = नदी में अथवा नदीके समीप रहनेवाले जीव या मानव [३१, ३७]

४१. **वैशन्तः** = छोटे तालावमें रहनेवाले जीव [३७] अथवा मनुष्य।

४२. **तीर्थ्यः** = तीर्थस्थान में रहनेवाले [४२], **ये तीर्थानि प्रचरन्ति** (६१) = जो तीर्थों में विचरते हैं, यात्री।

४३. **ऊर्म्यः** = लहरों में रहनेवाले [३१]

४४. **प्रवाह्यः** = प्रवाह में रहनेवाले [३१]

४५. **पार्यः** = परतीर में रहनेवाले [४२]

४६. **अवार्यः** = नदीके इधरके तीरपर रहनेवाले [४२]

४७. **फेन्यः** = जलके फेनमें रहनेवाले [४२]

४८. **द्वीप्यः** = द्वीपमें रहनेवाले, टापूमें रहनेवाले [३१]

४९. **निवेष्प्यः** = पानीके भंवरमें रहनेवाले [४४]

५०. **क्षयणः** = जहां पानी स्थिर रहता है, ऐसे स्थानमें रहनेवाले [४३]

ये सब रुद्र जलस्थानोंमें रहनेवाले प्राणियोंके रूप हैं। और देखिये--

५१. **हृदय्यः** = हृदयमें रहनेवाले (४४), हृदयको प्रिय लगनेवाले स्थानमें रहनेवाले।

५२. **वास्तुपः** = घरोंका संरक्षण करनेवाले [३९] पहरेदार।

५३. **वास्तव्यः** = घरोंमें रहनेवाले [३९]

'**वास्तव्य** तथा **वास्तुप**' ये दो पद सर्वसाधारण मानवजातिके वाचक हो सकते हैं। क्योंकि प्रायः मानव घरोंमें रहते और घरोंकी रक्षा करते हैं।

सर्वसाधारण रुद्र।

१. **उपवीति** = यज्ञोपवीत अथवा उत्तरीय धारण करनेवाले [१७]

१. **उष्णीषी** = पगडी अथवा साफा धारण करनेवाले [२२]

३. **हिरण्यबाहुः** = बाहुओंपर सुवर्णभूषण धारण करनेवाले [१७]

४. **कपर्दी**=जटा अथवा शिखा धारण करनेवाले [२९, ४८]

५. **व्युप्तकेशः** = जिनके बाल कटे हैं, हजामत बनाये हुए [२९], **विशिखासः** [५९] = शिखा न रखनेवाले, सिर मुंडन करनेवाले।

६. **सोम्यः** = शान्त [३९]

७. **याम्यः** = नियममें रहनेवाले [३३]

८. **क्षेम्यः** = आराम देनेवाले [३३], घरमें रहनेवाले,

९-११. **आशु, शीघ्र्य, अजिर** = शीघ्रता करनेवाले [३१]

१२-१९. **महान्** [२६], **सवृद्ध** [३०], **पूर्वज** [३२], **ज्येष्ठ** [३२], **अग्र्य** [३०], **प्रथम** [३०], **वृहत्** [३०], **वर्षीयस्** [३०], **वृद्ध** [३९], = बडा, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, पूर्वज।

२०-२६. **अर्भक** [२६], **ह्रस्व** [३०], **वामन** [३०], **मध्यम** [३२], **अपर-ज** [३२], **कनिष्ठ**, [३२] **अवसान्य** [३३] = छोटा, कनिष्ठ, बालक, निकृष्ट,

२७. **बुध्न्य** = तह में रहनेवाला [३२]

२८. **अप्रगल्भ** = अज्ञानी [३२]
२९-३०. **ताम्र, अरुण** [३९] = **विलोहित** [७,५२, ५८] **बभ्रु** [६], **सर्पिजर** [१७] लाल रंगवाले,
३१. **आक्रन्दयन्, उच्चैर्घोषः** = गर्जना करनेवाला [१९]
३२. **स्वपत्** = सोनेवाला [२३]
३३. **जाग्रत्** = जागनेवाला [१६]
३४. **शयानः** = लेटनेवाला [२३]
३५. **आसीनः** = बैठनेवाला [२३]
३६. **तिष्ठत्** = खडा रहनेवाला [२३]
३७. **धावत्** = दौडनेवाला [२३]

यहां नानाविध प्राणियों के नाम हैं, तथापि इनमें कईपद मानवप्राणियोंके भी वाचक हो सकते हैं, जैसा देखिये- **गव्हरेष्ठ** [४४] यह पद सिंहव्याघ्रादि जंगली जानवरों का वाचक करके ऊपर दिया है, पर इस पदका अर्थ ' गुहा में रहनेवाला मानव ' भी हो सकता है। जो गुहामें रहता है, वह गव्हरेष्ठ है। इसी तरह ' **नीप्य** = [३७] पहाड की तराई पर रहनेवाला ' यह मानव भी हो सकता है, क्योंकि पहाडों की तराई पर मनुष्य भी रहते हैं। ' **कूल्य** ' [४२] = नदीतीरपर रहनेवाला यह जैसा मानव, वैसाही अन्य प्राणी भी होना संभव है। इसी तरह अन्ततक समझना उचित है। ये पद प्राणियोंके वाचक हैं, फिर ये प्राणी मनुष्य हों अथवा अन्य हों। ये सब रुद्रदेवता के रूप हैं।

वास्तुपः— [३९] यह पद घरोंकी सुरक्षा के लिये जो पहरेदार होते हैं, उन का वाचक है। आगे ' **उपवीति** ' [१७] आदि शब्द मानवों के ही वाचक हैं। **व्युप्तकेश** [हजामत किये हुए], **विशिखासः** [शिखारहित, संन्यासी] ये सब निःसंदेह मानवही हैं।

इस के आगे [३२-३७] जागनेवाले, सोनेवाले, लेटनेवाले, बैठनेवाले, दौडनेवाले ये सब जाति के प्राणी हो सकते हैं, क्योंकि सभी प्राणी इन क्रियाओं को करते हैं।

१२ ते २६ तकके शब्द भी बालक-वृद्ध, जवान-तरुण, मध्यम-कनिष्ठ आदि अवस्थाओं के वाचक हैं, अतः ये पद सब प्राणियों के लिये प्रयुक्त हो सकते हैं। अतः इन अवस्थाओंमें रहनेवाले सभी प्राणी रुद्रदेवता के रूप हैं। बालक, तरुण, वृद्ध ये सब रुद्र हैं, अर्थात सभी प्राणी रुद्र हैं।

यहां प्राणियों की कोई भी अवस्था छूटी नहीं है, अर्थात् सब अवस्थाओं में विद्यमान सब प्राणी रुद्रदेवता के रूप हैं, यह यहां सिद्ध हुआ। पशुपक्षी, मानव, कृमिकीट, पतंग सभी रुद्र के रूप हैं। इसी तरह सूक्ष्म कृमि भी रुद्र हैं, जो जलों और अन्नोंद्वारा मनुष्यादि प्राणियों में प्रविष्ट होकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं। इनकी भयानकता प्रसिद्ध है—

सूक्ष्म रुद्र।

ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।
(वा. १६-६२)

जो अन्नों में तथा जलमें रहते हैं और अन्न खानेवालों तथा जल पीनेवालों में नाना प्रकार की पीडा उत्पन्न करते हैं, ये भी सूक्ष्म रोगकृमि रुद्र के रूप हैं।

वृक्षरूपी रुद्र।

१. **वृक्ष** (४०) = वृक्ष, पेड, वनस्पति।
२. **हरिकेश** (३०) = हरे रंगवाले पत्तेरूपी केश जिनको होते हैं, ऐसे।

इस तरह वृक्षवनस्पति भी रुद्र के रूप हैं।

ईश्वरवाचक रुद्र।

अब ईश्वरको इस रुद्रसूक्तमें ' विश्वरूपं ' कहा है। क्योंकि जब सभी रूप परमात्मा के हैं, तब विश्व के सब रूपों को कहां तक गिना जाय? एक बार ' **विश्वरूप** ' कहा, तो उसमें सब रूप आ गये, इसलिये ये नाम देखिये—

१. **विश्वरूपः** (२५) = विश्वका रूप धारण करनेवाला,
१. **विरूप** (२५) = विविध रूप धारण करनेवाला,
३. **भव** (२८) = सबका उत्पादक,
४. **शर्व** (२८) = प्रलयकर्ता,
५. **भगवः, ईशानः** (४३) = भगवान्, ईश्वर,
६. **भवस्य हेतिः** (१८) = संसार के दुःखों को दूर करने का साधन।

ईश्वर सब का कल्याण करता है, इसलिये निम्न लिखित पद उस में सार्थ होते हैं—

कल्याणकारी रुद्र।

३८-४०. **शिव, शिवतर** (४१), **शिवतम** (५१) = कल्याण करनेवाला।

४१-४१. **शंभु, शंकर** (४१) = शांति करनेवाला।
४३-४४. **मयोभव, मयस्कर** (४१) = सुख देनेवाला।
४५. **अघोर** (२) = जो भयानक नहीं है, जो शांत है।
४६. **सुमंगल** (६) = जो मंगल है।
४७. **शंगु** (४०) = शांतिसुख का दाता।
४८. **मीदुष्टम** (५१) = सुखदाता।
४९. **त्विषीमत्** (१७) = तेजस्वी।
५०. **विद्युत्** (३८) = बिजली के समान तेजस्वी।
५१-५१. **शिपिविष्ट, सहस्राक्षः** (२९) = सहस्रों किरणों से युक्त, तेजस्वी।

यहां तक जो रुद्रदेवता का वर्णन हुआ, उससे पाठकों को पता लग सकता है कि, तमाम विश्वरूप ही परमेश्वर का रूप है, इस रूप में सब रूप आ गये। सूर्य चंद्रके रूप, जल, पृथ्वी, अग्नि, विद्युत् के रूप, सब प्राणियोंके रूप, सब जन्तुओं के रूप इसमें आ गये हैं।

स्थावर-जंगम में राज्ययन्त्रके कर्मचारी, राजा, मन्त्री, नाना प्रकारके ओहदेदार, प्रजाजन, सैनिक, योद्धा, क्षत्रिय, स्त्रियां, बालक, वृद्ध, तरुण, पशुपक्षी आदि सब आते हैं, जो परमात्मा के ही रूप हैं। यही तो सदैक्यवादद्वारा बताया जा रहा है। इसलिये परमेश्वर के रूप में राज्ययंत्र का अन्तर्भाव होना स्वाभाविक है। सब राज्य-यन्त्र ईश्वर का स्वरूप है। इस विषय में इस यजुर्वेद के रुद्राध्यायद्वारा जो गूढ उपदेश दिया है, वह इस लेख में प्रकट करना है।

रुद्रदेवता संहार की देवता है, पर वह संहार जनता की भलाई करने के उद्देश्य में होता है। इसलिये यह रुद्रदेवता संघटना का कार्य भी करती है। इस देवताद्वारा जो संहार होता है, वह संघटना के लिये ही होता है। इस लिये रुद्रदेवता संघटना के लिये सहायक देवता है, यह बात यहां भूलनी नहीं चाहिये।

रुद्रदेवता ईश्वर का ही रूप है। ईश्वर संहारकारी है, वैसा रचनाकारी भी है। इसलिये जन्म और मृत्यु ये दोनों उसी के रूप हैं। इसलिये संहार से घबराना योग्य नहीं है। जंगल तोडने के बाद उस लकडी से घर बनते हैं, अर्थात् वृक्षों का तोडना घरों के बनानेका सहायक है। इसी तरह संहार आगामी रचना के लिये आवश्यक ही है।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥
(वा० य० १६।४९)

जिघांसद्भ्यः॥ २१॥ क्षयणाय च॥ ४३॥
(वा० य० १६)

रुद्रकी दो तनुएँ हैं। एक 'घोरा' तनु और दूसरी 'शिवा' तनु। रुद्र का घोर कर्म करनेवाला एक शरीर है और कल्याणकारक कर्म करनेवाला दूसरा शरीर है। इसीलिये इस रुद्र को जैसे 'शिव' कहते हैं, वैसे ही 'क्रूर' भी कहते हैं। अस्तु। इस से ज्ञात हो सकता है कि, इस देवताके मिष से जैसे विघटना के, तोडने के कार्यों का विधान है, वैसे ही संघटना के, संगठन के कार्यों का भी उल्लेख है। शत्रु के साथ लडना और उस का नाश करना, इसका एक विघटनाका कार्य है और राष्ट्रकी घटना करना इस का दूसरा संघटनाका कार्य है। यह दूसरा कार्य अब बताना है।

वा० यजु० के अ० १६, मं० २५ में "**नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः, नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः**" कहा है। यह गणपति-संस्था की महत्त्व की बात है। गणपतिके सहस्रनामों से '**गण, गणेश, गणपति, गणमण्डल, गणमण्डलाध्यक्ष, महागणपति**' आदि पद हैं। ये भी यहां देखने आवश्यक हैं। यही गणपति-संस्था रुद्र की शासनसंस्था में प्रधान कार्य करनेवाली संस्था है। गण और व्रात ये दो इन के संघटना के मूल भाग हैं।

गण और व्रात।

'व्रत' पालन करनेवालों के संघ का नाम 'व्रात' है और जो केवल एकत्र गिनाये गये हैं, उन का नाम '**गण**' है। '**गण्** संख्याने' धातु से '**गण**' शब्द बनता है, अतः इस का अर्थ जिनकी संख्या निश्चित की गयी है, जो गिने हैं, जिनकी गणना की गयी है, ऐसा होता है और एक व्रतसे, एक नियम से, एक उद्देश्य तथा एक ध्येय के कारण जो इकट्ठे कार्य कर रहे हैं, वे '**व्रात**' हैं। तीसरा एक संघटना बतानेवाला पद इस रुद्राध्याय में है, वह है '**पुञ्जिष्ठ**' अर्थात् पुञ्ज करके रहनेवाले, अनेक लोग मिलकर अपना जमाव बनाकर रहनेवाले। 'पुञ्ज' का अर्थ एकत्र मिलकर रहना है। रुद्रसंघटना के ये तीन भेद हैं।

वेदमें '**संभूति**' शब्द (वा. य. अ. ४०।९-११ में) आया है। कारीगरों की संघटना (व्यवसाय करनेवाली मंडली=

'कंपनी') के अर्थ में यह पद है। '**संभूति, संभवन, संभूयसमुत्थान**' आदि अनेक पद मिलकर व्यवसाय करने के अर्थ में भारतीय अर्थशास्त्र में प्रचलित हुए हैं। अनेक लोगोंने मिलकर बहुत धन इकट्ठा करके बडा व्यापारव्यवहार करने के अर्थ में ये पद प्राचीन काल से प्रयुक्त होते हैं। स्मृतियों और अर्थशास्त्र में इस तरह की संघटना के विषय में विस्तारपूर्वक उल्लेख हैं। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में उक्त '**संभूति, संभव**' ये पद मानवों के सांघिक जीवनविषयक व्यवहारके लिये आये हैं। पर रुद्राध्याय में इस पदका प्रयोग नहीं है, इसलिये हम यहाँ इस पदका विचार नहीं करेंगे।

गण, व्रात और पुञ्ज ये तीन पद रुद्र की संघटना के लिये इस रुद्राध्याय में प्रयुक्त हुए हैं, इसलिये इनका विचार हम यहाँ करेंगे।

१. '**गण**' पदसे 'गणना किये गये, गिने हुए लोग,'

२. '**व्रात**' पद से 'एक व्रत का पालन करनेवाले लोग,' और—

३. '**पुञ्ज**' पदसे 'एक जातिके लोग' बोधित होते हैं।

जनगणना करनेकी बात 'गण' पदसे बोधित होती है। रुद्रकी शासनसंस्थामें जनोंकी गणना की जाती थी, यह इससे सूचित होता है। विना गणना किये 'गण' बन ही नहीं सकते। इसलिये जहां गणोंका राज्य होता है, वहां जनगणना अवश्य होती है। महादेवके भूतगण प्रसिद्ध हैं। इन भूतगणोंमें जनगणना की जाती थी। ये ही गण रुद्रशासनमें प्रमुख घटक माने गये हैं।

एक नियमका पालन करनेवाले, एक कार्य करनेवाले, एक उद्देश्यसे संघटित हुए, एक ध्येयको माननेवाले जो लोग होंगे, उनके समूहका नाम '**व्रात**' है। कर्मव्यवसायसे, व्यापारव्यवहारसे ये व्रात नामक संघ निर्माण होते हैं। सैनिकोंके समूहों के भी ये नाम मरुत्सूक्तोंमें प्रसिद्ध हैं। एक ही उद्देश्यसे एक ही कर्ममें लगनेके कारण इनमें सांघिक बल बढा चढा रहता है।

पूर्वोक्त रुद्रसूक्तमें '**गण, गणपति, व्रात, व्रातपति**' ऐसे पद आये हैं। अर्थात् इन संघोंका एक अध्यक्ष भी रहता है। इस अध्यक्ष का कार्य अपने संघका हित करना होता है। (आजकल Union, Guild आदि श्रमजीवी लोगोंके संघ और उनके अध्यक्ष रहते हैं, वैसे ही यहां ये दीखते हैं।)

इससे पूर्व कहा है, '**गण, गणमण्डल, गणमहामण्डल**' ऐसे संघोंसे छोटे और मोटे संघ हुआ करते हैं। इसी तरह '**गणेश, गणपति, गणमण्डलेश, गणमहामण्डलाधिपति, महागणपति**' आदि नाम गणपतिसहस्रनामोंमें संघाधिपतियोंके दिये हैं। इससे इनके कर्तव्योंका ज्ञान हो सकता है और ये संघ अपने संघमें रहनेवाले लोगोंके लिये क्या कार्य करते हैं, इसका भी ज्ञान इन नामोंके मननसे हो सकता है।

'**पुंज**' के लिये '**पुंजपति**' नहीं है। '**पुंजिष्ठ**' पद ही है। अर्थात् इस नामके संघमें कोई अध्यक्ष नहीं होता था। ये संघके सभी सदस्य मिलकर अपना प्रबंध किया करते थे।

पुंज के सदस्य इकट्ठे होते हैं और वे सबके सब अपना संघ का हित या प्रबंध करने के लिये जो कुछ करना होगा वह कर लेते हैं। इनके नाम से यह सिद्ध होता है कि, ये संघशासक हैं। इन संघशासकों में कोई एक मुखिया नहीं होता। अतः ये पूरे पूरे '**समाजशासक**' होते हैं। इस पुंजव्यवस्था से गण और व्रात की व्यवस्थामें कुछ भिन्नता है। पाठक इस भेद को ध्यान में अवश्य धारण करें। पुंज का जाति के साथ संबंध है और ऐसा जातीय समाजशासन इस भरतखण्ड में कई जातियों में प्राचीन काल से इस समय तक प्रचलित है।

ये गण और व्रात संघ कार्य, व्यवहार, धंधा, उद्योग, सिद्धान्त या ध्येय के साथ संबंधित हैं। पुंज के समान जाति के या कुल के साथ संबंधित नहीं हैं। इसीलिये गण और व्रातके पूर्व दूसरे व्यवसायों का वाचक कोई पद अवश्य रखना चाहिये, तब इस व्यवस्था की कल्पना ठीक तरह ध्यानमें आ सकती है। वा० यजुर्वेदके १६ वें अध्यायमें ऐसे अनेक धंधोंके पद हैं, उनको इस के साथ जोड दें। देखिये, इससे ये संघ सिद्ध होते हैं—

धंधा	संघ
भिषक् (वैद्य)	भिषग्गण (वैद्यों का संघ)
वणिक् (वैश्य)	वणिग्गण (व्यापारियों का संघ)
क्षत्ता (बढई)	क्षत्तृगण (बढइयों का संघ)
तक्षा (तर्खाण)	तक्षगण (तर्खाणों का संघ)
रथकार (रथ बनानेवाला)	रथकारगण (गाडी बनानेवालों का संघ)
कुलाल (कुम्हार)	कुलालगण (कुम्हारों का संघ)

इस तरह कार्यव्यवहार करनेवाले धन्धेवालों के **गण** होते थे और शर्तें लगाकर, नियम बांधकर एक ध्येय से प्रेरित होकर

जो संघ बनते थे, वे '**व्रात**' कहलाते थे। उतने नियमों का, उतनी शर्तोंका ही बन्धन उन व्रातनामक संघवालोंपर रहता था। व्रात संघके सदस्य अन्य व्यवहारके लिये स्वतंत्र समझे जाते थे। 'गण' व्यवस्थामें हरएक सदस्यपर अन्य सदस्योंके हिताहितकी जिम्मेवारी पूर्णतया रहती थी, पर 'व्रात' व्यवस्थामें उतने निश्चित व्रतकी मर्यादा तक की ही यह जिम्मेवारी रहती थी। गणमें उत्तरदायित्व अधिक और व्रातमें नियमानुकूल मर्यादित रहता था। इस कारण गणमें प्रविष्ट होनेवालोंको लाभ भी अधिक होते थे और व्रातमें उसकी अपेक्षासे लाभ भी कम होते थे।

विचार करनेसे पता चलता है कि, गणसंस्थामें संमिलित होनेवाले सदस्योंका हित करनेका पूर्णतासे उत्तरदायित्व गणके अधिष्ठातापर रहता था। इसलिये गणेश अर्थात् गणके अधिष्ठाताको तथा गणपति अर्थात् गणके पालनकर्ताको गणके प्रत्येक सदस्यके हितकी सब जिम्मेवारी उठानी पडती थी। अर्थात् गणमें प्रविष्ट सदस्य बीमार हुआ, युद्धमें जखमी हुआ, किसी अन्य आपत्तिमें फँसा, तो ऐसी सब आपत्तियोंका निवारण करनेके लिये सुप्रबन्ध करनेका कार्य गणपतिको करना पडता था। यह भाव निम्नलिखित नामोंसे ज्ञात होता है– '**गणभीतिहर, गणदुःखप्रणाशन, गणभीत्यपहारक, गणसौख्यप्रद, गणाभीष्टकर, गणरक्षणकर्ता,**' ऐसे अनेक नाम हैं, जो बताते हैं कि गणोंका सब प्रकारसे हित करनेके लिये गणोंके अध्यक्षको अनेक प्रकारका योग्य प्रबंध करना पडता था।

'व्रात' के विषयमें जिम्मेवारी थोडी होती है। जिस नियम या शर्तसे वह व्रात संघटित होता था, उतना ही उत्तरदायित्व संघाधिपतिपर रहता था। अन्य बातोंके विषयमें उसको देखने की आवश्यकता नहीं होती थी।

गण व्यवस्थामें छोटीमोटी कई संस्थाएं थीं, जो निम्नलिखित नामोंसे ज्ञात हो सकती हैं– 'गणप, गणवर, गणेश, गणपति, गणाधीश, गणाग्रणी, गणाध्यक्ष, गणेश्वर, गणैकराट्, गणाधिराज, गणनायक, गणमण्डलाध्यक्ष' ये पद एक अर्थके वाचक नहीं हैं। प्रत्येक पदमें अधिकारका भेद है और तदनुसार छोटे या बडे संघका भी वह सूचक है।

गणमण्डलाध्यक्ष वह है, जो अनेक गणोंके संघोंका अध्यक्ष होता है। गणनायक वह है, जो गणोंको चलानेवाला है। गणप वह है कि जो गणोंका पालन करता है। ये सब पद गणशासन की प्रणाली बताते हैं। इन सबका विचार करनेसे इस शासन-सम्बन्धी सब बातोंका पता लग सकता है, पर हमें इस लेखमें गणपतिसंस्थाका पूर्ण विचार करना नहीं है, प्रत्युत रुद्रशासन-संस्थाका विचार करना है। इसके अन्तर्गत गणपति पद होनेसे गणपतिसंस्थाका थोडासा विचार करना आवश्यक हुआ, अतः अतिसंक्षेपसे यह विचार यहां किया है।

अपना प्रकृत विषय ठीक तरह समझमें आनेके लिये यजुर्वेद अ. १६ में आये गण और गणपति का थोडासा अधिक विचार करना आवश्यक है। विचार करनेके लिये मान लीजिये कि, '**रथकार-गण**' है, अर्थात् गाडियाँ बनानेवालोंका एक संघ रुद्रके अधिराज्यमें स्थापन हुआ है। इसका एक अध्यक्ष होगा, जिसका नाम '**रथकार-गणेश**' होगा। इस अध्यक्षका प्रथम कर्तव्य है अपने संघमें स्थित सदस्योंकी गणना करना, एक पुस्तकमें अपने सदस्योंके नाम, स्थान तथा उनकी आवश्यकताओंका लेख तैयार करके सुरक्षित रखना। अपने गणको अर्थात् संघसदस्यको कार्य न होगा, तो उसको कार्य देना, भोजनका प्रबंध न होगा तो करना, बीमार होनेपर दवाका प्रबंध करना, अर्थात् काम लेना और उसके बदले दाम देना अथवा सुखसाधन देना। इतने वर्णनसे पाठकोंके मनमें यह बात आयी होगी कि, यह गणव्यवस्था कैसी होनी चाहिये।

'**गण-आर्ति-हर**' यह नाम इस प्रबंधकी सुव्यवस्था का सूचक है। गणव्यवस्थामें आये सदस्योंकी हरप्रकारकी आपत्तियोंको दूर करना गणनायकका कर्तव्य होता है और वह उसको करना ही पडता है। सदस्य कर्म करनेके जिम्मेवार हैं, शेष जिम्मेवारी नायकपर रहती है।

पाठक ऐसी कल्पना करें कि, इस **रथकार-गण** में १०० सदस्य होंगे, तो उन को उन के करनेयोग्य काम देना, उन से काम करवा लेना और उन को सुखसाधन समय पर देना, यह इस गणसंस्था में अध्यक्ष का मुख्य कर्तव्य है। ऐसा प्रबन्ध करने के लिये देशभर कैसी सुव्यवस्था रखना आवश्यक है, इस का विचार पाठक कर सकते हैं। यह रथकार-संघ के विषय में हुआ।

इस के पश्चात् ऐसे अनेक गणों का '**गण-मण्डल**' होता है। जिस में एक दूसरे के साथ सम्बन्ध रखनेवाले अनेक उपकारण गणों का परस्पर सम्मेलन होता है और अनेक 'गण-मण्डलों' का मिलकर एक '**महागणमण्डल**' हुआ करता है।

हम पूर्वोक्त रुद्राध्यायमें देखेंगे कि, गणमण्डल में रथकार गण के साथ कौन से अन्य गण संमिलित हो सकते हैं हमारे विचार से निम्नलिखित कारीगरोंका गणमण्डल रथकार-गणके साथ बन सकता है- (क्षत्तृगण) बढइयोंका संघ, (तक्षगण) तर्खाणों का संघ, (कर्मारगण) लुहारों का संघ, ये और ऐसे एक दूसरेके साथ सम्बन्ध रखनेवाले अनेक कारीगरों के गणोंका मिलकर यह गणमण्डल होगा।

इस गणमण्डल का एक अध्यक्ष होगा। उसका कर्तव्य सब गणों का हित करना होगा। इस तरह सदस्यों का गण, गणों का गणमण्डल और गणमण्डलों का महागणमण्डल होता है। ऐसा संघों का यह जाला देशभर फैला रहता है। यह है गणशासन की आयोजना।

रुद्रसूक्त में जो नाम गिनाये हैं, उन में जो कार्यव्यवहार के वाचक नाम हैं, उन सब के ऐसे गण हैं, ऐसा समझकर इस रुद्रशासनप्रणाली का विचार करना चाहिये; तब वैदिक गण-शासन का महत्त्व ध्यान में आ सकता है। यहां प्रत्येक के संघ का स्वतन्त्र विचार करके लेख को व्यर्थ बढाने की आवश्यकता नहीं है। रुद्र की शासनव्यवस्था की कल्पना ही पाठकों को देना है। ऊपर दिये वर्णन से वह व्यवस्था पाठकों के मन में आ गयी होगी। इस तरह ब्राह्मणवर्ग में कई गण अथवा संघ, क्षत्रियों में अनेक गण अथवा संघ, इसी तरह वैश्य और शूद्रों में भी कार्यव्यवहार तथा व्यवसाय के गण बनाने से यह रुद्र-शासनप्रणाली परिपूर्ण होती है।

राष्ट्र में कोई मनुष्य गणव्यवस्था से बाहर नहीं रहने पाय, जिसके कर्म और व्यवहार की गणना नहीं हुई, ऐसा भी कोई मनुष्य नहीं रहना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को उसके करनेके लिये सुयोग्य कार्य मिलना चाहिये और उस कर्म के बदले उसको कर्मफलस्वरूप आवश्यक सुखसाधन प्राप्त होने चाहिये। यह इस गणव्यवस्था का मूल सूत्र है।

प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्म उत्तम कुशलता के साथ समाप्त करना चाहिये, कर्म के फलस्वरूप सुखसाधन देना इस शासनसंस्था की जिम्मेवारी है। कर्म करनेपर हरएक को आवश्यक सुखसमाधान मिलने ही चाहिये। आवश्यक सुख-साधनों में रहने के लिये सुयोग्य स्थान, भोजन के लिये योग्य और आवश्यक अन्न, पीने के लिये उत्तम जल, ओढने के लिये आवश्यक वस्त्र, बीमारी की निवृत्ति के लिये चिकित्सा के साधन, धर्मसंस्कार के समय पर होनेकी व्यवस्था, विद्या की पढाईकी व्यवस्था और आध्यात्मिक उन्नति के लिये आवश्यक गुरूपदेश आदिका समावेश होना स्वाभाविक है। जो सदस्य उत्तम धर्मानुकूल रहेंगे, उनका इस व्यवस्था से कल्याण होगा। पर जो नियमभंग करेंगे, उनको कठोर दण्ड देना भी इस रुद्रशासन के प्रबंधद्वारा ही होता रहता है। उसमें क्षमा नहीं होगी।

रुद्रसूक्त में जो नाम कार्यव्यवहार करनेवालोंके गिनाये हैं, उतने ही कार्यव्यवहार करनेवाले हैं, ऐसी बात नहीं है। किसी देशविशेषमें इससे न्यून वा अधिक भी कार्यव्यवहार करनेवाले लोग हो सकते हैं। वहां की स्थिति के अनुसार न्यून वा अधिक गणों की व्यवस्था होगी। उस रुद्राध्याय के वर्णन में इस रुद्रीय शासनव्यवस्था का पता लगने के लिये केवल सूचनामात्र उल्लेख है। उस अध्याय में '**गण, गणपति**' तथा '**व्रात, व्रातपति**' ऐसे नाम लिखकर इस गणशासन के व्यवहार की सूचना दी है। परन्तु प्रत्येक धंधेवाले के साथ '**गण**' शब्द उस अध्याय में लगाया नहीं है। वह उन धंधेवाले नामों के साथ लगाकर इस शासन की कल्पना पाठकों को करनी चाहिये, इसीलिये यह लेख लिखा है।

उक्त अध्याय में कई पद सर्वसामान्य भाव बतानेवाले हैं, उन्हें देखिये- (**उपवीती**) यज्ञोपवीतधारी, (**उष्णीषी**) पगडीधारी, (**कपर्दी**) शिखाधारी, (**व्युप्तकेश**) जिस के बाल कटे हैं। ये पद सामान्य हैं। प्रत्येक वर्णके लोगों को ये पद लगाये जा सकते हैं। 'उपवीती' पद तीन वर्णों के लिये प्रयुक्त हो सकता है, शेष तीनों पद सब मानवोंके लिये प्रयुक्त हो सकते हैं।

इसी तरह (स्वपत्) सोनेवाला, (जाग्रत्) जागनेवाला, (शयानः) लेटनेवाला, (आसीनः) बैठनेवाला आदि पद सर्वसामान्य मानवों के लिये अथवा प्राणियों के लिये लगाये जा सकते हैं। तथा (महान्) बडा, (ज्येष्ठ) श्रेष्ठ, (प्रथम) पहिला, (कनिष्ठ) छोटा आदि पद भी सामान्य पद हैं, जो हरएक प्राणी के लिये प्रयुक्त हो सकते हैं। ऐसे सामान्य पद इस अध्याय में कौनसे हैं, उनका पता पाठकों को उक्त पदों का अर्थ देखने से लग सकता है। ऐसे सर्वसामान्य पद छोडने चाहिये, और शेष पदों में जो पद कामधंधेके सूचक हैं, व्यापार व्यवहार के सूचक तथा विशेष उद्यम के सूचक हैं, उनके साथ ही यह '**गण**' पद अथवा '**व्रात**' पद लग सकता

है। ये '**गण, व्रात** और **पुंज**' पद सब व्यवसायों के साथ लगनेवाले पद हैं। उदाहरणके लिये हम कुछ ऐसे गण बता देते हैं—

ब्राह्मणवर्ण में- **गृत्सगण** (कवियोंका संघ), **श्रुतगण** (श्रुतिशास्त्रज्ञों का संघ), **अधिवक्तृगण** (उपदेशक संघ), **भिषग्गण** (वैद्यों का संघ), इ. इ.

क्षत्रियवर्ण में- **क्षेत्रपति-गण** (खेतोंके मालिकों का संघ), **रथीगण** (रथियोंका संघ), **स्वायुधगण** (उत्तम हथियार चलानेवालों का संघ), **दूरेवधगण** (दूर से वध करनेवालों का संघ), इ. इ.

वैश्यवर्णमें- **वणिग्गण** (व्यापारियोंका संघ), **संग्रहीतृ-गण** (बडे बडे संग्रह [Store] करनेवालोंका संघ), **पशु-पतिगण** (पशुपालकों का संघ), इ. इ.

शूद्रवर्ण में- **रथकारगण** (गाडी बनानेवालों का संघ), **इषुकृद्गण** (बाण बनानेवालों का संघ), **कुलालगण** (कुम्हारों का संघ), **निषादगण** (निषादोंका संघ), इ. इ.

इस तरह इस रुद्राध्याय का विचार करके जितने धंधेवाले यहां हैं और जितने कल्पना में आ सकते हैं, उतनों के संघों की अर्थात् उतने गणोंकी अथवा व्रातोंकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। इस तरह गणोंकी स्थापना के पश्चात् अनेक परस्पर सहायक गणोंका मिलकर एक गणमण्डल बनने की भी कल्पना पाठक करें। प्रत्येक गण का एक अध्यक्ष तथा गणमण्डल का प्रमुख बनाने का भी विचार इसी तरह हो सकता है। इस संस्था के अध्यक्ष वा प्रमुख का कर्तव्य पूर्व स्थानमें बताया ही है। गणके सब सदस्यों का ठीक तरह योगक्षेम चलाना संघप्रमुखों का कर्तव्य है। कर्म कुशलता से करना संघस्थों का कर्तव्य है। इस तरह विचार करनेसे निःसन्देह पता लग सकता है कि, यह गणशासन की आयोजना अत्यंत उत्तम है और बडी सुखदायी भी है।

इस में कर्मकर्ताओं को चिंता नहीं है, प्रमुखों को ही चिंता रहती है। कर्मकर्ताको इतनी ही चिंता रहती है कि, अपनी कारीगरी की अत्यधिक उन्नति करना। सबका योगक्षेम गणव्यवस्थाके प्रबंधद्वारा यथायोग्य होता रहता है।

शिक्षाका प्रबंध ब्राह्मणों के द्वारा विनामूल्य होता रहता है। रक्षाका प्रबंध क्षत्रिय करते रहते हैं। इसी तरह वैश्यशूद्रों के व्यवसायों का प्रबंध होता रहता है। और सब मानवों का योगक्षेम चलता है।

'**गणनायक**' का कार्य गणके सदस्यों को चलाना है। यहां नायक का अर्थ अधिपति नहीं है, परन्तु नेता अर्थात् चालक है। आज क्या कर्तव्य करना चाहिये, इस विषय की योग्य संमति अपने सदस्यों को देकर जो अपने संघ से उत्तमोत्तम कार्य कराता रहता है, वही गणनायक होता है। गण का ईश, गण का पालक, गण का अधिपति, गण का नायक ये सब विभिन्न कर्तव्य बतानेवाले पद हैं। इनके विभिन्न कर्तव्य अच्छी तरह समझनेसे ही गणशासन का उपयोगित्व ठीक तरह ध्यान में आ सकता है।

गण का अधिष्ठाता जानता है कि, अपने संघ में कितने कर्मकर्ता हैं, किसको किस वस्तु की जरूरत है, उस की आवश्यकता की पूर्तता किस तरह करनी चाहिये, अपने संघ में कौन बीमार है, किस वैद्य से उसकी चिकित्सा करनी योग्य है, आदि का विचार गण का अधिष्ठाता करता रहता है। गणमण्डल के अन्दर अनेक संघ संमिलित रहते हैं, उनके धंधोंका परस्पर संबंध रहता है और वे धंधे एक दूसरे के साहाय्यकारी रहते हैं। इसलिये गणमण्डल की सुव्यवस्थासे सब गणों का सुख बढता जाता है।

गणमण्डलों के मुख्य **महागणमण्डलाध्यक्ष** के पास सभी प्रकार की व्यवस्था रहती है। सारे कारीगरोंके सब पदार्थ उसके कार्यालयमें जमा होते हैं और आवश्यकताके अनुसार वह पदार्थों का लेनदेन करता है। अनावश्यक वस्तुओं के निर्माण पर वह प्रतिबंध रखता है, और आवश्यक वस्तुओं के निर्माण की प्रेरणा करता है। एक वार इस तरह की सुव्यवस्था की कल्पना पाठकोंके मनमें उतर गयी, तो वे ही इस सब व्यवस्था के विषय में उत्तम कल्पना अपने मन में कर सकते हैं। इस दृष्टि से यह वा० यजुर्वेद का १६ वाँ अध्याय विशेष अध्ययनीय है। साथ ही साथ वा० यजुर्वेद ३० वाँ अध्याय भी मननपूर्वक अध्ययन करनेयोग्य है। १६ वाँ अध्याय रुद्रदेवताके रूप बताने के लिये है और ३० वाँ अध्याय नारायण पुरुष के रूप बताने के लिये है। पर तत्त्वदृष्टि से दोनों का आशय एक ही है।

यह गणशासनव्यवस्था वेद की आदर्श शासनव्यवस्था है। इस से प्रजा का हित अधिक से अधिक हो सकता है। प्रजा

का सुख अधिक से अधिक करने के लिये इसी मार्ग से जाना चाहिये। इस में शासकों की व्यवस्था इस तरह रहती है—

१. **रुद्र** = (महारुद्र, महादेव) = सर्वाधिपति।

२. **मंत्री** = मन्त्री, सलाहकार।

३. **सभा, सभापति** = राष्ट्रसभा, राष्ट्रसभापति, ग्रामसभा, प्रांतसमिति, आमंत्रण (मन्त्रीमंडल)।

४, **गण, गणपति** = गणोंकी नाना प्रकार के संघों की व्यवस्था।

५. **व्रात, व्रातपति** = नाना प्रकार व्रतनिष्ठ संघों की व्यवस्था।

६. **पुञ्जिष्ठ** = मानवपुञ्जों की व्यवस्था।

यह व्यवस्था पूर्व स्थान में बतायी है। गण, महागण, गणमण्डल आदि बडे बडे संघों में से राष्ट्रसभा के सदस्य चुने जाते हैं और इस तरह राज्य का नियंत्रण होता रहता है और वहां प्रत्यक्ष जनताके साथ रातदिन रहनेवाले और जनता की स्थिति देखनेवाले ही लोग आते हैं, इसलिये उन का शासन जनहित का साधक होता है।

इस के साथ साथ निम्न लिखित कार्यकर्ता भी होते हैं—

७. **क्षेत्रपतिः** = खेतों की रक्षा करनेवाले,

८. **वनपतिः** = वनों की पालना करनेवाले,

९. **स्थपतिः** = स्थानों के पालनकर्ता,

१०. **कक्षाणां पतिः** = राष्ट्र की कक्षा चारों ओर की परिधि होती है, वहीं की सुरक्षा करने के लिये जो नियुक्त होते हैं, वे कक्षापति कहलाते हैं, गुप्त स्थानों के रक्षक।

११. **पत्तीनां पतिः** = पैदल विभाग के नेता,

१२. **सेना, सेनापतिः** = सब प्रकार की सेना और उस के अधिपति,

१३. **सेनानी** = सेना का संचालन करनेवाले,

१४. **आव्याधिनीनां पतिः** = हमला करनेवाली सेना के नेता।

इस तरह सेना की व्यवस्था इस रुद्रशासन में रहती है। इस रुद्राध्याय में सैनिकों के नाम बडे विस्तारपूर्वक दिये हैं। पाठक उन सब को यहां रखकर उन का कार्य राष्ट्ररक्षा में कितना है, इस का यथायोग्य विचार करें, उन सबको यहां पुनः लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

१५. **वास्तुपः** = घरोंकी रक्षाके लिये नियुक्त पहरेदार,

१६. **वास्तव्यः** = लोग जहां रहते हैं, वहां रहनेवाला,

१७ **गह्वरेष्ठः** = गिरिकंदरों की रक्षाके लिये नियुक्त,

१८. **नादेयः, तीर्थ्यः** = नदी तैरकर पार होनेके स्थान-पर रक्षा के लिये तथा सहाय-तार्थ नियुक्त,

१९. **नक्तंचरः** = रात्रीके समय घूमकर रक्षा करनेमें नियुक्त।

इस तरह अनेकानेक पदोंसे पाठक योग्य बोध प्राप्त कर सकते हैं और रुद्र की शासनव्यवस्थाका पता भी इस से लगा सकते हैं।

यहां पाठक देखें कि, रुद्राध्याय (वा. यजु. अ. १६) के विशेष सूक्ष्म रीति के इस अध्ययन से एक विशेष प्रकार की गणशासन की प्रणाली का बोध यहां हमें मिला है। यह वैदिक व्यवस्था है और प्रत्येक प्रजाजनका इससे लाभ हो सकता है। इस विषय में विस्तारपूर्वक बहुत कुछ स्पष्टीकरण करना आवश्यक है, परन्तु वैसा करने के लिये हमारे पास यहां स्थान नहीं है।

एक रुद्रके अनेक रूप हैं।

एक ही रुद्र के ये सब मानवी रूप हैं। गण, गणपति ये दोनों रुद्र के रूप हैं। मन्त्री और राजा, सेना और सेनापति, क्षेत्र और क्षेत्रपति, वणिक् और ग्राहक, शिष्य और गुरु ये सब रुद्र के रूप हैं। कोई मनुष्य, कोई प्राणी अथवा कोई वस्तु रुद्रका रूप नहीं, ऐसी वस्तु यहां नहीं है।

यहां राजा भी ईश्वर का रूप है और प्रजा भी। दोनों मिलकर एक ईश्वरके दो रूप हैं। राजा-प्रजा, गुरु-शिष्य, मालक-मजदूर, धनी-सेवक, ज्ञानी-अज्ञानी ये सब ईश्वरके ही रूप हैं, अतः ये परस्पर की सेवा करनेयोग्य हैं। एक सत्ता के ये अंश हैं। अतः सब की मिलकर एक ही सत्ता माननी चाहिये। यहां किसी की भी विभिन्न सत्ता नहीं है। हम सब एक ही जीवन के अंश हैं, यह जानकर परस्पर के सहायक व्यवहार हम सबको करने चाहिये।

जिस तरह एक शरीर में सिर, आंख, नाक, कान, मुख, जिह्वा, दांत, होट, गाल, बाहु, अंगुलियां, हात, पेट, पांव

आदि अनेक अवयव एक ही जीवनके अवयव हैं और पूर्णतया परस्पर सहायता करना इनका कर्तव्य है, सब का मिलकर एक जीवन है, यह जानना, मानना और उस एक जीवन के हितके लिये अपना समर्पण करना प्रत्येक अवयव का कर्तव्य है, उसी तरह सब मानव एक ही जीवनके अंश हैं, यह जानना, मानना और उस अखंड, अटूट, अनन्य एक जीवनका अत्यधिक हित करनेके लिये अपने जीवनको लगाना, अर्थात् पूर्ण की सेवाके लिये अंशने अपना अर्पण करना आवश्यक है ।

जो लोग शंका करते हैं कि सदैक्यवादसे राष्ट्रीय शासन किस तरह होगा, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रकी उन्नति तथा राष्ट्रीय संघटना किस तरह होगी, इस शंकाका उत्तर इस लेखमें दिया गया है । वेदने जनताकी उन्नतिके लिये '**सदैक्यवाद**' दिया और इस वादसे सिद्ध होनेवाला राष्ट्रीय संघटनाका आदर्श भी मानवोंके सम्मुख गणव्यवस्थाद्वारा रख दिया । सदैक्यवादसे अनन्य-भावकी सिद्धता होती है और सब प्राणियोंका मिलकर एक अखण्ड और अटूट जीवन है, इसके विषयमें निश्चय होता है । इस निश्चयके पश्चात् व्यक्ति व्यक्तिकी, संघ संघकी तथा जाति जाति की सेवामें लगकर, परस्पर सेवाशुश्रूषासे जो सबकी उन्नति होती है, उस उन्नतिकी आयोजनाकी कल्पना इस गणसंस्थासे पाठकों के मनमें स्थिर हो सकती है। इस तरह सदैक्यवादसे राष्ट्रोन्नति सिद्ध होती है और इससे मानवताका भी पूर्ण विकास हो सकता है।

इस रुद्राध्याय में सब प्राणी रुद्रके रूप हैं ऐसा कहकर संघटना का वैदिक संदेश दिया है । अन्य स्थानों में पुरुष, नारायण, आत्मा, ब्रह्म आदिके सब रूप हैं, ऐसा बता कर वही संदेश दिया है । सदैक्यवाद का तत्त्व यह है कि, सबके रूप भिन्न होने पर भी सब की सत्ता तत्त्वतः एक मानना । यहां तत्त्वतः भिन्न अनेक सत्ताएं नहीं हैं । इस सदैक्यवाद के सिद्धान्त को व्यवहार में लानेके लिये छोटे छोटे गणों में यह तत्त्व प्रथम आचरणद्वारा तथा परस्पर सेवाद्वारा सिद्ध करना चाहिये । पश्चात् गणों के, संघों के और राष्ट्रके व्यवहार में लाना चाहिये और अन्त में मानवों के व्यवहार में लाना योग्य है । इसका मार्ग जो वेद ने बताया है, वह यह है । इसका विचार पाठक करें ।

अस्तु । रुद्रदेवताका स्वरूप और उसका कार्य इसका विचार यहांतक हुआ । पाठक रुद्रके मंत्रोंका अधिक विचार करें और वेदका आशय जाननेका यत्न करें । यहां रुद्रके संपूर्ण मंत्रोंका संग्रह इसी प्रकारके मनन के लिये इकट्ठा किया है ।

मननीय विषय

'**रुद्र**' देवताका अतिव्यापक स्वरूप यहां बताया है । संपूर्ण विश्वमें एक ही एक रुद्र है । उस रुद्रके ये सब रूप हैं । रूप अनन्त होनेपर भी उन सबमें एक ही रुद्र व्याप रहा है । अर्थात् विभिन्न रूपोंमें एक अभिन्न देव रहा है ।

यह केवल भारतमें ही है ऐसी बात नहीं है, परंतु भूमंडल पर जितने मानव या प्राणी हैं उन सबनें नाना रूपोंसे यही एक रुद्र विराजता है । इस रीतिसे विचार करनेपर तत्काल ध्यानमें आ जाता है, कि संपूर्ण पृथिवीपर रहनेवाली मानव जनता एक ही रुद्रके रूप हैं । यहां सब मानवोंकी एकता स्पष्ट सिद्ध हो रही है ।

पृथिवीपर अनेक देश हैं । वे पृथक् पृथक् हैं ऐसा आज सब लोग मान रहे हैं । भारतके उत्तरमें तिब्बत है, पूर्वमें ब्रह्मदेश और चीन है, दक्षिणमें लंका है, पश्चिममें अफगाणिस्थान और ईरान है । इसी तरह युरोपमें, अमेरिकामें, आफ्रिकामें तथा आशियामें नाना देश हैं और उनमें नाना प्रकारके विभिन्न लोग हैं । आज ये देश आपसमें झगड रहे हैं, युद्ध कर रहे हैं और हम एक नहीं हैं ऐसा मान रहे हैं ।

पर वेद कहता है कि यह सब '**विश्वरूप**' रुद्रका ही रूप है । किसी देशके ज्ञानी, शूर, वाणिज्यकर्ता और कारीगर ये सब रुद्रके ही रूप हैं । अर्थात् वेदकी दृष्टीसे ये सब विश्वके रूप एक रुद्रके ही रूप हैं । इस तरह वेदने सब विश्वको बताया है कि यह सब '**विश्वरूप**' एक अद्वितीय रुद्रका ही रूप है ।

अर्थात् तत्त्वदृष्टीसे ये सब मानव प्राणी रुद्रके ही रूप हैं । इस तरह तत्त्वदृष्टीसे एकता वेदद्वारा प्रतिपादन की है । सब पृथिवी भरके लोगोंके मनमें यह बात आ जाय, तो उनको तत्त्वतः हम अविभक्त हैं, यह समझमें आ सकेगा और सबकी सेवा करना अपना धर्म है, यह बात ध्यानमें आ जायगी ।

आज कई देश आगे बढे हैं और कई पीछे रहे हैं । आगे बढे हुए देशोंका कर्तव्य है कि, वे पीछे रहे हुओंकी सेवा करें और उनको उन्नत करें । ये लोग पीछे रहे हैं इसका दोष आगे बढे हुओंका है, यह एक वार वेदका उपदेश ध्यानमें आ जाय, तो सब झगडे मिट सकते हैं । विश्वरूप तत्त्वतः एक है, एक देह है, यह जाननेपर झगडेका मूल ही दूर हो सकता है ।

श्रेष्ठ प्रचारक चाहिये

आज सब भूमंडलपर इस वैदिक ज्ञानका प्रचार करनेवाले श्रेष्ठ प्रचारक चाहिये। जो वेदके तत्त्वको जानकर, ठीक तरह समझ कर, उसका उत्तम रीतिसे प्रचार करें और विश्वसेवा करनेका धर्म सब देशोंमें प्रसृत करें।

वेदके प्रचारक ऐसे होने चाहिये, कि जो वेदका गुह्य अर्थ ठीक तरह समझें हों और जिनको वेदके वचन मुखोद्गत हों। तथा देशदेशकी भाषाएं जिनको आती हों। ऐसे प्रचारक विश्वभरमें वैदिक धर्मका प्रचार करनेके लिये जांय और एक एक देशमें इस धर्मतत्त्वका प्रचार करें तो सर्वत्र वैदिक धर्मका प्रचार हो सकता है।

वेदमें देवताका जो स्वरूप वर्णन किया है, वह यह है। यह पाठक समझें, इस विश्वमें विभिन्नता भी है और साथ साथ एकता भी है। जैसा हमारे शरीरमें आंख, नाक, कान, हाथ, पांवोंमें भिन्नता भी है और एक शरीरके ये अवयव हैं, इस कारण एकता भी है। वैसा ही पृथिवी भरकी मानवजातीके विषयमें समझना और सबको विश्वसेवामें लगना चाहिये।

प्रश्न

१ ज्ञानी पुरुष रुद्र हैं इसके कुछ वैदिक पद बताइये।

२ क्षत्रिय वर्गके रुद्रोंमें दस शब्द बताइये।

३ वैश्य वर्गके रुद्र बतानेवाले पांच पद बताइये।

४ शिल्पी वर्गके रुद्र पांच पदोंसे बताइये।

५ आततायी वर्ग रुद्रोंके कुछ नाम बताइये।

६ प्राणीयोंके स्वरूपमें रुद्र हैं उनके दस नाम लिखिये।

७ सर्वसाधारण रुद्रोंके रूप बतानेके लिये दस नाम लिखिये।

८ अन्न-पानीमेंसे रुद्र पेटमें जाते हैं और वहां रोग निर्माण करते हैं इसका वेदवचन क्या है ?

९ ईश्वरवाचक रुद्रोंके नाम पांच बताइये।

१० 'गण' और 'व्रात' व्यवस्थामें कौनसा तत्त्व बताया है वह स्पष्ट कीजिये।

११ एक रुद्रके अनेक रूप हैं यह कैसे होता है यह बताइये।

१२ रुद्रका विश्वरूप किस तरह है यह विषय वेदवचन देकर समझाइये।